International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 1073-1074

दार्शनिक प्रेम एवं उसका विश्लेषण

ममता रानी
शोधकर्त्ता, कलिंगा विश्वविद्यालय, नया रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत।

सारांश
मानव मन में सत् असत् दोनों प्रकार के भाव विधमान है। सत् भाव मानव मन का उत्रयन करते है और असत् भाव उसका उपनयन करते हैं। सत् भावों से मानव जीवन में विकास होता है और असत् भावों में मानव जीवन संकुचित होकर दुःखों का कारण बनता है प्रेम सत् भावों में से एक प्रमुख भाव हैं, यह ह्रदय की यह रागात्मिक वृत्ति है जो मानव ह्रदय को मनुष्य, प्रकृति, जीवन और सम्पूर्ण चराचर सत्ता से जोड़ती है। यह मानव मन को तृप्ति प्रदान करने वाली वृत्ति है। यह वृत्ति लौकिक जगत् ही नहीं आध्यात्मिक जगत् में भी अपनी विशेष भूतिका रखती है। प्रेम के महत्व के स्वरूप प्रतिपादन करते है हुए महर्षि नारद ने लिखा हैं।

अनिवचर्नीय प्रेम स्वरूपन।
गुण रहितकाम नारहित।
प्रतिक्षणवद्धमानम विच्छित्रसुभ्यतरमनुभवरूपन।

मूल शब्दः दार्शनिक प्रेम, रागात्मिक वृत्ति, महर्षि नारद

प्रस्तावना
प्रेम का स्वरूप निवर्चनीय है, जिस प्रकार कोई गूंगा व्यक्ति किसी सरस पदार्था के आस्वादन का तो अनुनभवगन्य है। यह पहले तो विषयजन्य होता है, गुणों के कारण उत्पन्न होता है किन्तु बाद में विषय निरपेक्ष बन जाता है।
यदि मानव जीवन का प्रवृत्तिपरक सूक्ष्म विश्लेषण जाये तो मानव जीवन प्रेम के विपिध रूपों का ही विस्तार है। यह प्रेम ही है जो सकारात्मक और निषेधात्मक भावों के साथ व्यक्ति के अपने जगत् के साथ निर्माण करता है यदि यह कहा जाये कि मानव का जीवन–लक्ष्य ही प्रेम सिद्धि है तो असंगत नहीं होगा। मानव का लौकिक जीवन प्रेम के संकीर्ण स्वरूप का परिणाम होता है। प्रेमवृत्ति लौकिक विषयों को संकीर्ण दृष्टि के साथ जब अपना, आलम्बन बनाती है, तब लौकिक प्रेम की सृष्टि होती है। संकीर्ण दृष्टि के कारण लोकिक प्रेम जीवन–गकति का नियामक होकर भी अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न करता है जीवन की विंसगतियों से चिन्तित मानव मन संकीर्णता की सीमा से निकलकर विश्व के समष्टिपरक रूप की और बढ़ता है जिससे प्रेम वृत्ति के इस उदात्तिकरण का परिणाम आध्यात्मिक प्रेम होता है इस प्रकार प्रेम मानव संरचना का एक ऐसा प्रमुख घटक है जो एक सुक्ष्म बीज की तरह मानव के अंदर रहता हुआ मानव संस्कृति के सभी रूपों का विकास करता है। यही कारण है कि प्रेम तत्व को अनेक सन्दभों में देखने समझने के बाद ही इसके स्वरूप को समझा जा सकता है। प्रेम के इस स्वरूप पर विभिन्न विद्वानों, आचायों, भक्तों और भकत कवियों ने अपने–अपने ढंग से विचार किया हैं। प्रेम–तत्त्व सम्बंधी चिन्तन, विश्लेषण अनुभूति, ही प्रेम को एक दर्शन का आधार प्रदान करती है यह प्रेम–दर्शन हमारे शोध का अनभीष्ट बिन्दु है।

साहित्य की समीक्षा
डॉ गोविन्द त्रिगुणायत रहस्यवाद को ज्ञान और भक्ति से नितांत भिन्न मानते हुए कहते हैं– "जब साधक भावना के सहारे अभिव्यक्ति सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में सजाकर रखने लगता है तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टी होती है"। इसी आध्यात्मिक अनुभूतियों का चरम सौंदर्य भक्तिकाल में कबीर अपने प्रबल भावों, उद्‌गारों को व्यक्त करने में असमर्थ हो जाते हैं तो अस्पष्ट प्रतीकों, धुधले शब्दों और भाषा की नई भंगिमा का इस्तेमाल करते है जिससे उनकी कविता रहस्यवाद का स्वरूप ग्रहण करती है. जिस प्रकार कबीर के यहाँ सीम–असीम का विरोधी नहीं है, रूप–अरूप का विरोधी नहीं है उसी प्रकार उनके यहाँ रहस्य यथार्थ विरोधी नहीं है। कबीर का रहस्य मध्यकालीन भारतीय समाज का स्वप्निल केंद्र– (दिजेंल) है।
कबीर जयशंकर प्रसाद के शब्दों में "काव्य में आत्मा की संकल्पनात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है। वास्तव में कबीर ऐसे एकेश्वरवाद की स्थापना करते है जिसमे ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण तो है परन्तु सारे धार्मिक अनुष्ठानों को नकारा गया है और इस तरह वह कट्टर इस्लाम से बहुत आगे निकल गया है। कबीर के लिए ईश्वर से एकाकार होने का अर्थ मनुष्यों का एक होना है और इसलिए वहाँ शुद्धता और छुआछुत की प्रथा को सम्पूर्ण रूप से, स्पष्ट शब्दों में नकारा गया है तथा सब तरह के अनुष्ठानों को अस्वीकार किया गया है।

दर्शिनिक प्रेमः
अभी हम संकेत कर चुके है कि हमारे शोध–अध्ययन का अभीष्ट बिन्दु प्रेम–दर्शन है। प्रेम–दर्शन के संरचनात्मक आभार का संकेत भी हम दे चुके है। लेकिन प्रेम–दर्शन के सम्यक स्वरूप निर्धारण के लिए हमें प्रेम–दर्शन के व्युत्पत्तिपरक स्वरूप पर भी विचार करना होगा।
जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है प्रेम–दर्शन शब्द–दो शब्दों के योग से बना है, प्रेम और दर्शन। समास–विग्रह के आधार पर इसका अर्थ होता है प्रेम का दर्शन। दर्शन शब्द अपने परिभाविक स्वरूप में आध्यात्मिक सत्ता के तात्त्विक विश्लेषण और उसके जीवन दर्शन

का पर्याप्त बन कर रह गया है। उस अर्थ सन्दर्भ से हमारा यहां कोई तात्पर्य नही है। यहाँ तो प्रेम के सन्दर्भ में दर्शन अपने व्युत्पत्तिपरक अर्थ के साथ ही प्रेम–दर्शन के स्वरूप को स्पष्ट करने में समर्थ होगा।

दर्शन का अर्थ

दर्शन शब्द व्यवहारिक रूप से हमारे जीवन के साथ अनुरूप है। संपूर्ण मानवीय अनुभूति व्यापार की क्रियाशीलता मानवीय विचार पर आधारित है। गीता में कहा गया है ''श्रद्धाओं के अनुरूप ही मनुष्य होता है, उसकी कार्यप्रणाली निश्चित होती है तथा उसी के अनुरूप उसकी उपलब्धी है।'' यही मनुष्य और उसके जीवन दृष्टि का दर्शन है।

दर्शन शब्द का व्युत्पत्तिलम्य अर्थ है दृश्यते अनेम् इति दर्शनम्– जिसके द्वारा देखा जाए। क्या देखा जाए? वस्तु का सत्य भूत तात्विक स्वरूप क्या है? उसकी सद्भावना कहां से हुई? उसका दृश्यमान स्वरूप क्या है? उसकी जीवन में भूमिका क्या है? तथा जीवन प्रवाह में सक्रियता कि लिए उसके कौन–कौन से साधन एवं मार्ग है? इन प्रश्नों का समुचित उत्तर देना ही दर्शन का काम है।

पाश्चात्य चिन्तन में दर्शन का पर्याय फिलसयफी है। इस शब्द का निर्माण दो ग्रीक शब्दों से हुआ है– फिलास–प्रेम या अनुराग तथा सोफिया – विघा। अतः इस शब्द का अर्थ है विघा का प्रेम – विघानुराग। किसी भी वस्तु या विषय की तात्त्विक जानकारी के लिए किया गया प्रयोग और उसकी अनुभूति तथा बुद्धिजन्य उपलब्धि ही फिलासफी कही जा सकती है।

प्रेम –दर्शन

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, कि प्रेम–दर्शन प्रेमा का दर्शन है। अतः प्रेम का वह तात्त्विक स्वरूप जो हस्तामूलकवृत हो उसे देखने की दृष्टि ही प्रेम–दर्शन है दूसरे शब्दों में प्रेम के स्वरूप पर सभी दृष्टिकोणों से विचार ही प्रेम–दर्शन कहा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रेम–दर्शन के अध्ययन के लिए हमें प्रेम के स्वरूप का सूक्ष्म अध्ययन करना होगा।

प्रेम–तत्त्वः स्वरूप, वं विवेचन
प्रेम का व्युत्पत्तिपरक अर्थ

प्रेम शब्द की व्युत्पत्ति 'प्री' धातु से 'मि.न्' प्रत्यय के साथ हुई है जिसका अर्थ है 'प्रयस्य भावा' अर्थात् प्यार मुहब्बत अनुराग अनुकम्पा आमोद–प्रमोद, हर्ष–प्रसन्न।

इस प्रकार धात्वर्थ में ही 'प्री' शब्द के साथ आनन्द की भावना प्रतिष्ठित है, वाचसपत्यम् में प्रेम शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए कहा गया है– 'ष्यन्' प्रत्यय का संभाग करके 'प्रेमन्' प्रेम भावात्मक संज्ञा व्युत्पन्न की गयी है, यह 'शब्द' प्रेम भावार्थक हो जाता है। सूर्य जैसे शब्दों में मिलने वाला 'य' प्रत्यय 'प्री' धातु के साथ मिलकर विषेपण की व्युत्पत्ति करता है। यह प्रियभाव ही प्रेम है।

व्याकरण के आधार पर प्रेम शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि जाक प्रिति दे तृप्ति दे वही प्रेम है। प्रीत और तृप्ति देने की क्रिया प्रिय के सम्बद्ध होकर सम्पन्न हो सके, वही व्यापार प्रेम है। इस प्रकार प्रिय से अनेक भावों के साथ जुडना ही प्रेम कहलाता है।

उपसंहार

प्रेम के संबंध में भारतीय और पाश्चात्य विचारकों ने विविध संदर्भों में अनेक दृष्टिकोण से विचार किया है। इन सभी सन्दर्भों और दृष्टिकोणों के सामने रखकर विचार किया जाये तो परस्पर विरोधी विचारधाराएं उभरकर आती है। भारतीय चिन्तन परम्परा में प्रेम को परम् पुरूषार्थ मानते हैं। जबकि अन्याय चिन्तन परम्पराओं में प्रेम को पुरूषार्थहीन बनाने वाली वृत्ति कहा गया है। गालिब की धारणा है कि प्रेम पुरूषार्थ को खोकर व्यक्ति को निकम्मा बना देता है। जॉन्सन प्रेम को अनेक मनोवेगों में से एक मनोवेग मानते हैं वे समूचे जीवन की दृष्टि से उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं मानते।

गालिब और जॉन्सन प्रेम की एक दिशा को संपूर्ण जीवन के सन्दर्भ में नकारात्मक दृष्टिकोण से देखते है। जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि प्रेम मानव की आादि एवं चिरंतन भावना है। मानवीय मन की विरोधी भावनाएं, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध और वैर प्रेम के ही प्रतिकात्मक भाव है। सामान्यतः देखा जाये तो मानव के सम्पूर्ण अस्तित्व का आधार प्रेम ही है। उसकी सम्पूर्ण श्वासों का सम्बन्ध प्रेम है। माँ का निष्छल वात्सल्य, बहन का भोला स्नेह, प्रेमिका का सन्मोहन, भाई–भाई का प्यार, पिता–पुत्र का स्नेह, मित्रों की प्रीति सभी कुछ तो 'प्रेम' शब्दों के घेरे में समा जाते हैं। यह घेरा ढाई अक्षर का होने पर भी विशालतम है। बुद्ध की करूणा ईसा का स्नेह। और गाँधी की अहिंसा सभी का मूलाधार प्रेम है। सच तो यह है कि जब मानव मानव से प्रेम करना सीखा तभी उसका विकास सम्भव हो सका। अन्यथा विश्व के इस विशाल चिडियाघर में मानव भी एक पशु विशेष के रूप में अपनी पहचान बनाकर रहता। प्रेम ने मानव मन का संधान कर उसे सच्चे अर्थों में मानव रूप दिया। उसमें मनुष्य के पाषविक दुर्गुणों और दुष्प्रवृत्तियों का शोधन कर मानव समाज की पथरीवी पगडंडियों पर फूल खिला दिये प्रेमजन्व उसी महक का स्थूल व्यक्त रूप मानव का संपूर्ण जीवन है।

इस प्रकार प्रेम मानव की संपूर्ण स्वरूप संरचना में तात्त्विक रूप में समाया हुआ है। मनुष्य की जैविकीय, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक संरचना में प्रेम के आधारभूत मूल तत्व निहित है। इन सभी सन्दर्भों में प्रेम तात्त्विक स्वरूप पर विचार करते हुए हम प्रेम–दर्शन का स्वरूप निर्धारण करेंगें।

संदर्भ

1. नारद भक्ति सूत्र–सूत्र
2. गीता,
3. भारतीय दर्शन–बलदेव उपाध्याय,
4. भारतीय दर्शन–बलदेव उपाध्याय
5. संस्कृति शब्दार्थ कौस्तुभ
6. वाचसपत्यम्
7. प्रेम पुमार्थो महान–चैतम्य महाप्रभु